इकाई. 5 अथर्ववेद– अर्थ, स्वरूप शाखाएं एवं वर्ण्य विषय

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

वेदों को भारतीय साहित्य का आधार माना जाता है अर्थात् परवर्ती संस्कृत में विकसित प्रायः समस्त विषयों का श्रोत–वेद ही है। काव्य दर्शन, धर्मशास्त्र, व्याकरण आदि सभी दोनों पर वेदों की गहरी क्षाप है। इन सभी विषयों का अनुशीलन वैदिक ऋचाओं से ही आरम्भ है। वेद से भारतीयों का जीवन ओतप्रोत है। हमारी उपासना के भाजन देवगण हमारे संस्कारों, की दशा बताने वाली पद्धति, हमारे मस्तिष्क को प्रेरित करने वाली विचारधारा इन सबका उद्भव स्थान वेद ही हैं अतः हमारे हृदय में वेद के प्रति यदि प्रगाढ़ श्रद्धा है तो कोई आश्चर्य का विषय नहीं है, परन्तु वेदों का महत्व इतना संकिर्ण तथा सीमित नहीं है। मानव जातियों के विचारों को लिपिबद्ध करने वाले गौरवमय ग्रन्थों से सबसे प्राचीन है।

इन वेदों में अथर्ववेद एक भूयसी विशिष्टताा से संवलित है। अन्यतीन वेद परलोक अर्थात् स्वर्गलोक के प्राप्ति के साधन है वही अथर्ववेद इहलोक फल देने वाला है। मनुष्य जीवन को सुखमय तथा दुःख से रहित करने के लिए जीन साधनों की आवश्यकता है उनकी सिद्धि ही अथर्ववेद का मूल प्रतिपाद्य विषय है। यज्ञ के निष्पादन में जिन चार ऋत्विज की आवश्यकता होती है उनमें अन्यतम–ब्रह्मा का साक्षात् सम्बन्ध इसी वेद से है। उनमें अन्यतम–ब्रह्मम का साक्षात् सम्बन्ध इसी वेद से है। यह ब्रह्मा यज्ञ का अध्यक्ष होता है। इसके लिये उसे मानस बल से पूर्ण होना आवश्यक है। वे चारों वेदों का ज्ञाता होता है। परन्तु प्रधान वेद अथर्ववेद ही होता है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ के दो मार्ग है–वाक् तथा मन। वचन के द्वारा वेदत्रयी यज्ञ के एक पक्ष को संस्कृत बनानी है दूसरे पक्ष का संस्कार ब्रह्मा करता है और मन के द्वारा करता है। इन कथनों से स्पष्ट है कि अथर्ववेद की आवश्यकता हमारे जीवन के लिए कितनी है?

इस इकाई के माध्यम से आप अथर्ववेद के विभिन्न पक्षों का अध्ययन बड़ी ही सरलता, सुगमता से कर सकेगें, तथा अथर्ववेद की महत्ता को जान सकेगें।

5.2 उद्देश्य

- इस इकाई के माध्यम से आप अथर्ववेद के अर्थ तथा स्वस्थ्य का जान सकेगे।
- अथर्ववेद की शाखाओं तथा वर्ण्य विषय से परिचित हो सकेगें।
- अथर्ववेद विषयक अनेक पक्षों से सम्बन्धित प्रश्नों के के उत्तर सरलता के साथ दे सकेगें।

5.3 अथर्ववेद–अर्थ, स्वरूप, शाखाएं

5.3.1 अथर्ववेद का अर्थ

अथर्ववेद के उपलब्ध अनेक अभिधानों में अथर्ववेद, ब्रह्मवेद, अंगिरोवेद, अथर्वा"रस वेद आदि नाम मुख्य है। 'अथर्व' शब्द की व्याख्या तथा निर्वचन निरूक्त (11/2/17) तथा गोपथ–ब्राह्मण (1/4) में मिलता है। 'पर्व' धातु कौटिलय तथा हिंसावाची है। अतएव 'अथर्व' शब्द का अर्थ है अकुटिलता तथा अंहिसा वृत्ति से मन की स्थिरता प्राप्त करने वाला व्यक्तिा। इस व्युत्पत्ति की पुष्टि में योग के प्रतिपादक अनेक प्रसंग स्वयं इस वेद में मिलते है (अथर्व 6/1;10/2/26–28)। होता वेद आदि नामों की तुलना पर ब्रह्मकर्म के प्रतिपादक होने से अथर्ववेद 'ब्रह्मवेद' कहलाता है ब्रह्मवेद नाम का यही मुख्य कारण है। ब्रह्मज्ञान का अंशतः प्रतिपादन है, परन्तु वह बहुत कम है।

'अथर्वागि"रस' पद की व्याख्या करने से प्रतीत होता है कि यह वेद दो ऋषियों के द्वारा दृष्ट मन्त्रों का समुदाय प्रस्तुत करता हैं अथर्व–दृष्ट मन्त्र शान्ति पुष्टि कर्मयुक्त है तथा अ"रस–दृष्ट मन्त्र आभिचारिक है। इसलिए वायुपुराण (65/27) तथा ब्रह्माण्ड पुराण (2/1/36) में अथर्ववेद को घोर कृत्याविधि से युक्त तथ प्रत्यंगिरस योग से युक्त होने से कारण 'द्विशरीर शिराः' कहा गया है। 'प्रत्य"रसयोग' का तात्पर्य अभिचार का प्रतिविधान अर्थात् शान्तिपुष्टि कर्म है। इन अभिधान से स्पष्ट है कि अथर्ववेद में दो प्रकार के मन्त्र संकलित हैं–शान्ति–पौष्ठिक कर्मवाले तथा आभिचारिक कर्मवाले। 'आंगिरसकल्प' में मारण, मोहन, उच्चाटन आदि प्रख्यात षट्कर्मों का विधान बतलाया गया है; ऐसा नारदीय पुराण का कथन है (5/7)

आंगिरसे कल्पे षट्कर्माणि सविस्तरम्।
अभिचार–विधानेन निर्दिष्टानि स्वयंभुवा।।

एक तथ्य विचारणीय हैं अवेस्ता का 'अर्थवन्' शब्द अर्थवन् का ही प्रतिनिधि है और बहुत सम्भव है दोनों का समान अर्थ है–ऋग्नि का परिचारक ऋत्विक्। फलतः उसके द्वारा दृष्ट मन्त्रों में शान्ति तथा पुष्टिकारक मन्त्रों का अन्तर्भाव होना स्वाभाविक है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण (3/12/9/1) में 'अथर्वणा–म"रसां प्रतीची' में दोनों के मिलित स्वरूप का वर्णन है। सम्भवतः इन दोनों ऋषियों के द्वारा दृष्अ मन्त्रसमूह पृथक् सत्ता भी धारण करता था। इस दृष्टि से गोपथब्राह्मण के एक ही प्रकरण में 'आथर्वणी वेदोऽभवत्' और 'आंगिरसो वेदोऽभवत्' वाक्य मिलते है (11/5,11/18) शतपथ ब्राह्मण (13/4/3/2) में भी इन दोनों का पृथक्–उल्लेख किया गया है। सर्वत्र हो 'अथर्वा"रस' अभिधान उपलब्ध है जिससे अथर्वा ऋषि के अभ्यर्हित होने का संकेत मिलता है। इससे यह तथ्य निकाला जा सकता है कि इस वेद में शान्तिक पौष्टिक मन्त्रों की सत्ता प्रथमतः थी जिनमें आभिचारिक मन्त्रों का योग पीछे किया गया।

5.3.2 अथर्ववेद का स्वरूप

अथर्ववेद के स्वरूप की मीमांसा करने से पता चलता है कि यह दो धाराओं के मिश्रण का परिणतफल है। इनमें से एक है अथर्वधारा और दूसरी है अ"रोधारा। अथर्व द्वारा दृष्ट मन्त्र शान्ति पुष्टि कर्म से सम्बद्ध है। इसका संकेत भागवत 3/24/24 में भी उपलब्ध होता है–'अथर्वणेऽदात् शान्ति यया यज्ञो वितन्यते।' अ"रोधारा अभिचारिक कर्म से सम्बन्ध रखती है और यह इस वेद के जन–सामान्य में प्रिय होने का संकेत है। शान्तिक कर्म से सम्बद्ध होने से अथर्व का सम्बन्ध श्रौतयाग से आरम्भ से ही है। पीछे आभिचारिक कर्मों का भी सम्बन्ध होने से यह राजा के पुरोहित वर्ग के लिए नितान्त उपादेय वेद हो गया। ऋग्वेदत्रयी तथा अथर्व का पार्थक्य स्पष्टतः ग्रन्थों में किया गया हैं वेदत्रयी जहाँ 'पारत्रिक' पारलौकिक फलों का दाता है, वहाँ अथर्व 'ऐहलौकिक' है। एक विशेष तथ्य ध्यातव्य हैं जयन्तभट्अ ने न्यायमज्जरी में अथर्ववेद को 'प्रथम वेद' माना है–'तत्रवेदाश्चत्वारः, प्रथमोऽथर्ववेदः'। नगर खण्ड भी इसे आद्य वेद बतलाता है तथा युक्ति देता है कि सार्वलौकिक कार्यसिद्धि में अथर्व ही मुख्यरूपेण प्रयुक्त होता है और इसीलिए वह 'आद्य' कहलाता है। जयन्त भट्ट ने अथर्ववेद के प्राथम्य पर विस्तार से विचार किया है।

राजा के लिए अथर्ववेद का सविशेष महत्त्व है। राजा के लिए शान्तिक पौष्टिक कर्म तथा तुलापुरुषादि महादान की महती आवश्यकता होती है ओर इन सबका विधान अथर्ववेद की निजी सम्पत्ति है। इस विषय में पुराण तथा स्मृति ग्रन्थों का प्रमाण प्रचुर

मात्रा में उपलब्ध होता हैं विष्णु पुराण का स्पष्ट कथन है कि राजाओं को पौरोहित्य, शान्तिक, पौष्टिक आदि कर्म अथर्व–वेद के द्वारा कराना चाहिए। मत्स्यपुराण का कथन है कि पुरोहित को अथर्व मन्त्र तथा ब्राह्मण में पारंगत होना चाहिये (पुरोहितं तथा अथर्व–मन्त्र–ब्राह्मण–पारगम्) कालिदास के वचनों द्वारा इस तथ्य की पुष्टि होती है। कालिदास ने वसिष्ठ के लिए 'अथर्व निधि' का विशेषण दिया है जिसका तात्पर्य है कि रघुवंशियों के पुरोहित वसिष्ठ अथर्व मन्त्रों तथा क्रियाओं के भण्डार थे (रघु० 1/59)। राजा आज अथर्ववेद के वेत्ता गुरु वसिष्ठ द्वारा अभिषेक संस्कार किये जाने पर शत्रुओं के लिए दुर्धर्ष हो गया (8/3)। यहाँ पर कालिदास ने वसिष्ठ को अथर्व–वेत्ता कहा है (स बभूव दुरासदः परैर्गुरुणाऽर्थ्वविदा कृतिक्रियः 8/3) 'अथर्वपरिशिष्ट' में लिखा है कि अथर्ववेद का ज्ञाता शान्तिकर्मका पारगामी जिस राष्ट्र में निवास करता है वह राष्ट्र उपद्रवां से हीन होकर वृद्धि को प्राप्त करता है। इस सब प्रमाणों का निष्कर्ष है कि राजपुरोहित को अथर्ववेद के मन्त्रों का तथा तत्सम्बन्धों अनुष्ठानों का ज्ञाता अवश्य होना चाहिए। इन्हीं कारणों से अथर्ववेद ऐहलौकिक माना जाता है, जहाँ अन्य तीनों वेद पारलौकिक (पारत्रिक) माने गये है।

5.3.3 अथर्ववेद की शाखाएं–

अथर्ववेद को छोड़कर अन्य तीन वेदों की केवल एक ही संहिता पाई जाती है जो मुद्रित और प्रकाशित है। परन्तु अथर्ववेद की तीन संहिताओं का पता चलता है। अथर्ववेदीय कौशिक सूत्र के दारिल भाष्य में इने त्रिविध संहिताओं के नाम तथा स्वरूप का परिचय दिया गया हैं इन संहिताओं के नाम है (1) आर्षी संहिता (2) आचार्य संहिता (3) विधिप्रयोग संहिता। इन तीनों संहिताओं में ऋषियों के द्वारा परम्परागत प्राप्त मन्त्रों के संकलन होने से इस संहिता कहा जाता है। अथर्ववेद का आजकल जो विभाजन काण्ड, सूक्त तथा मन्त्र रू ा में प्रकाशित हुआ है इसी शौनकीय संहिता को ही ऋषि–संहिता कहते है। दूसरी संहिता का नाम आचार्य संहिता है जिसका विवरण दारिलभाष्य में इस प्रकार पाया जाता है। ''येन उपनीय शिष्यं पाठयति सा आचार्य–संहिता''। अर्थात् उपनयन संस्कर करने के पश्चात गुरु जिस प्रकार से शिष्य को वेद का अध्यापन करता है वही आचार्य–संहिता कही जाती हैं उदाहरण के लिए अथर्ववेद का यह मन्त्र लिया जा सकता है। शौनकीय अथर्वसंहिता के प्रथम काण्ड के तृतीय सूक्त का प्रथम मन्त्र इस प्रकार है :–

''विद्या शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्। तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं वहिष्टे अस्तु बालिति। 1/3/1'' परन्तु इसी सूक्त का दूसरा मन्त्र यह है–विद्या शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम्। ते ना ते तन्वे........अस्तु बालिति। तीसरा मन्त्र भी ऐसा ही है जिसमें 'विद्या शरस्य पितरं'' तो आदि तेना ते तन्वे......अस्तु बालिति'' अन्त में है। इन तीनों मन्त्रों के अनुशीलन से पता चलता है कि प्रथम मंत्र में 'पर्जन्यं शतवृषणयम'। दूसरे मन्त्र में 'मित्रे शतवृष्ण्यम्' और तीसरे मन्त्र में 'वरुर्ण शतवृष्ण्यम्' अंश ही केवल नवीन है। इसके अतिरिक्त इन मन्त्रों के 'विद्या शरस्य पितर' आदि में ओर ''ते ना ते तन्वे शंकरं पृथिव्यां तो निषेचनं बहिष्टे वालिति' यह मन्त्र का अंश अन्त में प्रत्येक मन्त्र में आवृत्त किया गया है। अतः आचार्य अपने शिष्यों को पढ़ाते समय केवल मन्त्र में आये हुए नवीन अंशों का ही अध्यापन करता था। इन्हीं नवीन मन्त्रों का संग्रह आचाग्र संहिता है। इस आचार्यसंहिता के पदपाठ से युक्त हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है।

विधि–प्रयोग संहिता वह है जिसमें मन्त्रों के प्रयोग किसी विशिष्ट विधि के अनुष्ठान के लिए किये जाते हैं। इस अनुष्ठान के अवसर पर एक ही मन्त्र के विभिन्न पदों के विभक्त करके नये–नये मन्त्र किये जाते हैं। यथा –

आर्षी संहिता का मन्त्र यह है–

"ऋतुभ्यष्ट्वऽऽर्तवेभ्यो, माद्भ्यो संवत्सरेभ्यः।
धात्रे विधात्रै समृधे भूतस्य पतये यजे।।"

अब इस मन्त्र को विभक्त करके आठ मन्त्र अनुष्ठान के लिये तैयार किया जाते हैं। जैसे–

(1) ऋतुभयः त्वा यजे स्वाहा।
(2) आर्तवेभ्यः त्वा यजे स्वाहा।
(3) माद्भ्यः त्वा यजे स्वाहा।
(4) संवत्सरेभ्यः त्वा यजे स्वाहा।

इसी प्रकार से धात्रे, समृधे, ओर भूतस्य पतये के बाद भी 'तवा यजे स्वाहा' जोड़ा जायेगा। विधि में प्रयुक्त होने वाले इन मन्त्रों का समुदाय 'विधि–प्रयोग संहिता' कहा जाता है।

विधि–प्रयोग संहिता का यह पहिला प्रकार है। इसी भाँति से इसके चार प्रकार और भी होते हैं। दूसरे प्रकार में नये शब्द मन्त्रों में जोड़े जाते है। तीसरे प्रकार में किसी विशिष्ट मन्त्र का आवर्तन उस सूक्त के प्रति मन्त्र के साथ किया जाता है। इस प्रकार से सूक्त के मन्त्रों की संख्या द्विगुणित कर दी जाती हैं चौथे प्रकार में किसी सूक्त में आये हुए मन्त्रों के क्रम का परिवर्तन कर दिया जाता है। पाँचवें प्रकार में किसी मन्त्र के अर्ध भाग को ही सम्पूण मन्त्र मानकर प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार आर्षी संहिता के मन्त्रों का विधि–प्रयोग संहिता में पाँच प्रकार से प्रयोग या उपयोग किया जाता है।

इससे स्पष्ट है कि ऋषिसंहिता ही मूल संहिता है। आचार्य संहिता में इसका संक्षेपीकरण कर दिया जाता है जबकि विधि–प्रयोग संहिता में इसका विस्तृतीकरण प्राप्त होता है। आचार्य दारिल के कौशिक सूत्र के भाष्य के अनुसार अथर्व संहिता के उपर्युक्त तीन प्रकारों का यह विश्लेषण किया गया है।

अथर्व में विज्ञान

अथर्ववेद के भीतर आयुर्वेद के सिद्धान्त तथा व्यवहार की अनेक महनीय जिज्ञास्या बातें भरी हुई हैं, जिनके अनुशीलन से आयुर्वेद की प्राचीनता, प्रामाणिकता तथा व्यापकता का पूरा परिचय हमें मिलता है। रोग, शारीरिक प्रतीकार तथा औषध के विषय में अनेक उपयोगी एवं वैज्ञानिक तथ्यों की उपलब्धि अथर्ववेद की आयुर्वेदिक विशिष्टता बतलाने के लिये पर्याप्त मानी जा सकती है। तक्म रोग (ज्वर) का सामाान्य वर्णन (6/21/1–3), सतत–शारद–ग्रैश्म–शीत–वार्षिक–तृतीय आदि ज्वर के प्रभेदों का निर्देश (1/25/4–5), बलास रोग का अस्थि तथा हृदय की पीड़ा करना (6/14/1–3), अपचित (गण्डमाला) के एनी–श्येनी–कृष्णा आदि भेदों का निदर्शन (6/83/1–3) यक्ष्मा, विद्रव, वातीकार आदि नाना रोगों का वर्णन (9/13/1–22) इस संहिता में स्थान–स्थान पर किया गया है। प्रतीकार के विषय में आधुनिक प्रणाली की शल्यचिकित्सा का निर्देश अतीव विस्मयकारी प्रतीत होता है, जैसे–मूत्रघात होने पर शरशलाका आदि के द्वारा मूत्र का निःसारण (1/3/19) सुख प्रसव के लिए योनिभेदन (1/11/1–6) जल–घावन के द्वारा व्रण का उपचार (5/17/1–3) आदि। नाना कृतियों के द्वारा नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति का सिद्धान्त प्राचीन आयुर्वेद को आधुनिक वैद्यकशास्त्र के साथ सम्बद्ध कर रहा है। रोग कारक नाना कृमियों का वर्णन (2/31/1–5), नेत्र, नासिका तथा दाँतों में प्रवेश करने वाले कृमियों के नाम तथा निरसन का उपाय (5/23/1–13) तथा सूर्य–किरणां के द्वारा इनका नाश (4/37/1–12) आदि अनेक विषय वैज्ञानिक आधार पर निर्मित प्रतीत होते हैं। रोगों के निवारणार्थ तथा सर्पविष के दूरीकरणार्थ नाना ओषधियों, औषधों तथा मणियों

का निर्देश यहाँ मिलता है। आश्चर्य की बात है कि 'विषस्य विषमौषम्' का सिद्धान्त भी अथर्व के एम मन्त्र में (7/88/1) पाया जाता है। इसीलिए तो आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद माना जाता है।

अनेक भौतिक विज्ञानों के तथ्य भी यहाँ यत्र–तत्र बिखरे मिलते हैं। उन्हें पहचानने तथा मूल्यांकन करने के लिए वेदज्ञ होने के अतिरिक्त विज्ञानवेत्ता होना भी नितान्त आवश्यक है। एक दो पदों या मन्त्रों में निगूढ़ वैज्ञानिक रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। जिसे वैज्ञानिक की शिक्षित तथा अभ्यस्त दृष्टि ही देख सकती है। एक विशिष्ट उदाहरण ही इस विषय–संकेत के लिए पर्याप्त होगा। अथर्ववेद के पच्चम काण्ड के पच्चम सूक्त में लाक्षा (लाख) का वर्णन है, जो वैज्ञानिकों की दृष्टि में नितान्त प्रामाणिक तथ्यपूर्ण तथा उपादेय है। आजकल राँची (बिहार) में भारत सरकार की ओर से 'लाख' के उत्पादन तथा व्यावहारिक उपयोग के विषय में एक अन्वेषण–संस्था कार्य कर रही है। उसकी नवीन वैज्ञानिक खोजों के साथ इस सूक्त में उल्लिखित तथ्यों की तुलना करने पर किसी भी निष्पक्ष वैज्ञानिक को आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता। आधुनिक विज्ञान के द्वारा समर्पित और पुष्ट की गई सूक्त–निर्दिष्ट बातें संक्षेप में ये हैं–

(1) लाह (लाख, लाक्षा) किसी वृक्ष का निस्यन्द नहीं है, प्रत्युत उसे उत्पन्न करने का श्रेय कीट–विशेष को (मुख्यतया स्त्री–कीट को) हैं। वह कीट यहाँ 'शिलाची' नाम से व्यवहृत किया गया है। उसका पेट लाल र" का होता है और इसी से वह स्त्री (कीट) संखिया खाने वाली मानी गयी हैं यह कीट अश्र्वस्य, न्यग्रोध, घव, खदिर आदि वृक्षों पर विशेषतः रह कर लाक्षा को प्रस्तुत करता है 4/5/5।

(2) स्त्री कीट के बड़े होने पर अण्डा देने से पहिले उसका शरीर क्षीण हो जाता है और उसके कोष में पीलापन विशेषतः आ जाता है। इसीलिए यह कीट यहाँ 'हरिण्यवर्णा' तथा 'सूर्यवर्णा' कही गई है (5/5/6)। इसके शरीर के ऊपर रोंये अधिक होते है। इसीलिए यह 'लोमश वक्षणा' कही गई हैं लाह की उत्पत्ति विशेष रूप से वर्षा काल की अँधेरी रातों में होती है और इसी लिए इस सूक्त में रात्रि माता तथा आकाश पिता बतलाया है (1/5/1)।

(3) कीड़े दो प्रकार के होते हैं–(क) सरा = रेंगनेवाले; (ख) पतत्रिणी = पंखयुक्त, उड़ने वाले (पुरुष कीट)। शरा नामक (स्त्री) कीड़े वृक्षों तथा पौधों पर रेंगते हैं और इससे वे 'स्परणी' कहलाते हैं।

5.4 अथर्ववेद का वर्ण्य विषय

अथर्ववेद का विषय–विवेचन अन्य वेदों की अपेक्षा नितान्त विलक्षण है। इसमें वर्णित विषयों का तीन प्रकार से विभाजन किया जा सकता है–(1) अध्यात्म, (2) अधिभूत् और (3) अधिदैवत। अध्यात्म प्रकरण में ब्रह्म, परमात्मा के वर्णन के अनन्तर चारों आश्रमों का भी पर्याप्त निर्देश है। अधिभूत प्रकरण में राजा, राज्यशासन, संग्राम शत्रुवाहन आदि विषयों का वर्णन प्रस्तुत किया गया हैं अधदेवत प्रकरण में नाना देवता, यज्ञ तथा काल के विषय में पर्याप्त ज्ञातव्य सामग्री है। इस स्थूल विवेचन के बाद विस्तृत विवरण नीचे दिये गया है–

(1) भैषज्यानि सूक्तानि

इस प्रकरण के अन्तर्गत रोगों की चिकितसा से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्र तथा विधि–विशेषों का अन्तर्भाव होता है। रोगों की उत्पत्ति नान प्रकार के पीड़ा वाले राक्षसों तथा भूत–प्रेतों के कारण होती है। इसलिए अनेक मन्त्रों में इन्हें दूर करने का उपाय वर्णित है। कौशिकसूत्र में इन मन्त्रों की सहायता से किये जानेवाले जादू टोनों का भी

विशेष वर्णन है। रोगों के लक्षण तथा उनके कारण उत्पन्न शारीरिक विकारों का विशद वर्णन आयुर्वेद की दृष्टि से विशेष महत्त्वशाली है। अथर्ववेद में तक्मन ज्वर का ही नाम है, इसके विषय में अथर्ववेद में तक्मन ज्वर का ही नाम है, इसके विषय में अथर्ववेद का वर्णन है कि ज्वर मनुष्यों को पीला बना देता है, तथा आग के समान तीव्रगमी से लोगों को जला डालता है। इसलिए उससे प्रार्थना की जाती है कि या तो वह गायत हो जाय अथवा यह मूजवत्, वहि्णक, तथा महावृष नामक सुदूर प्रान्तों में भाग जाय (5/25/7/8) बलास रोग (क्षय) (6/14), गण्डमाला (6/83), यक्ष्मा (6/85) जिसे दूर करने के लिए वरुण नामक औषधि के सेवन का उपयोग), खाँसी दन्त–पीड़ा (6/140) आदि रोगों तथा उनकी ओषधि का वर्णन बड़ी ही सुन्दरता से अथर्ववेद में किया गया हैं सर्प–विष को दूर करने के भी अनेक उपाय वर्णित हैं। सूक्त 5/13 में असित तैमात, आलिगी, विलिंगी, उरुगूला आदि साँपों के नाम उल्लिखित हैं, जिन्हें लोकामन्य तिलक ने विदेशी प्रभावों का सूचक बतलाया है। अनेक औषधियों तथा वृक्षों की प्रशंसा में भी अनेक मन्त्र मिलते हैं। डाक्टर विन्टरनित्स ने अथर्ववेद में उल्लिखित अप्सरा तथा गन्धर्व–विषयक भावनाओं की जर्मनदेशीय भावनाओं से तुलना की है।

(2) आयुष्याणि सूक्तनि–

दीर्घ आयु के लिए प्रार्थना करने वाले मन्त्रो का सम्बन्ध इस विभाग से है। इन सूक्तों का विशेष प्रयोग पारिवारिक उत्सवों के अवसर पर होता था, जैसे बालक का मुण्डन, युवक का गोदान (प्रथम क्षौरकर्म) तथा उपनयन संस्कार। इन सूक्तों में एकदशत शरद् तथा एकशत हेमन्त तक जीवित रहने के लिए, सौ प्रकार के मृत्युओं से बचने के लिए, प्रत्येक प्रकार के रोग से रक्षा के निमित्त प्रार्थनायें उपलब्ध होती है। अथर्व में आयु की दर्घता के लिए हाथ में 'रक्षासूत्र' धारण करने के विशेष विधान मिलता है। इस रक्षासूत्र के धारण करने से प्राणी को पूर्ण स्वास्थ्य तथा चिरजीवन की सद्यः प्राप्ति होती है। 17वें कांड का एकमात्र सूक्त इसी के अन्तर्गत आता है।

(3) पोष्टिकानिसुक्तानि

इन विभाग के अन्तर्गत घर बनाने के लिए, हल जोतने के लिए, बीज बोने के लिए, अनाज उत्पन्न करने के लिए, पुष्टि के लिए, विदेश में व्यापार करने के लिए जानेवाले वणिक् के लिए, नाना प्रकार के आशीर्वाद की प्रार्थना की गई हैं इस विषय में सबसे सुन्दर वृष्टि सूक्त (अथर्व 4/15), है, जिसमें वृष्टि का बड़ा ही रमणीय, साहित्यिक तथा उज्ज्वल वर्णन उपलब्ध होता है।

(4) प्रायश्र्चित्तानिसुक्तानि –

इन सूक्तों में प्रायश्रि्त्त का विधान पाया जाता है। प्रायश्रि्त का विषय है। चारित्रिक त्रुटि या धार्मिक विरोध तथा अन्य विधिहीन आचरणों का विधान–जैसे ज्ञात और अज्ञात अपराध के हेतु धर्मशास्त्र द्वारा अर्जित विवाह के कारण, ऋण का प्रतिशोध न करने के कारण, बड़े भाई के विवाह करने के कारण जो अपराध मानवों से होता है उसे दूर करने के लिए यहां प्रायश्चितों का विधान है। इनसे संबंध रखनेवाले ऐसे उत्सव, गीत तथा मंत्र पाये जाते है, जिनके द्वारा शारीरिक दुर्बलता, मानसिक त्रुटि, दुःस्वप्न, अपशकुन आदि वस्तुएं निराकृत तथा दूरीकृत की जाती हैं। इस युग में अशुभ शकुनों में भी विश्वास था– पक्षियों के उड़ने का स्वप्न, युग्म बालक के जन्म का स्वप्न, बालक का अशुभ नक्षत्र में जन्म। आज की भांति उस युग में भी इन अपशकुनों के द्वारा मानव अपने कल्याणय की भावना से भयभीत तथा त्रस्त होता था और दूर करने के निमित्त अनेक उपायों को करता

था, जिनका यहां बहुल विवरण मिलता है।

(5) स्त्रीकर्माणि –

विवाह तथा प्रेम से संबंध रखनेवाले बहुत से सूक्ति तत्कालीन समाज का चित्र प्रस्तुत करने के लिए सहायक है। इन सूक्तों में पुत्रोत्पति के लिए तथा सद्योजात शिशु की रक्षा करने के लिए भव्य प्रार्थना की गई है। 14 वां कांड विशेषतः इसी प्रसंग से संबंध है। दूसरे प्रकार के मंत्रों में अपनी सपत्नों को वश में करने के लिए तथा अपने पति के स्नेह का सम्पादन करने के लिए अनेक जादू–टोनों का वर्णन है। कौशिक–सूत्र से पता लगता है कि किसी स्त्री के प्रेम सम्पादन के लिए किस प्रकार उसकी मिट्टी की मूर्ति बनाई जाती है, तथा बाण के द्वारा उसके हृदय को विद्व किया जाता है, तथा उस समय अथर्व (3।25) के मंत्रों का पाठ भी कियाय जाता ह। इसी प्रकार पति के वशीकरण के निमित्त स्त्री उसकी मूर्ति बनाकर गरम बाणों के सिरे से उसके मस्तक को बेधती है। साथ ही साथ अथर्व वेद के 6।130, 6।138 सूक्त के मंत्रों का पाठ भी करती है। इन सूक्तों में देवताओं से पति को पागल बनाने का प्रर्थना है जिससे वह दिन–रात उसी के ध्यान में आसक्त रहे– ''हे मरूत्! मेरे पति को उम्नत बना दो, हे अन्तरिक्ष ! तथा हे अग्नि! उसे पागल बना दो जिससे वह मेरा ही चिन्तन किया करे'' (6।130।4)। यदि वह भागकर तीन या पांच योजना भी अन्यत्र चला गया हो तो वह लौट आवे (अ० 6।131।4)। सबसे भयानक तो वह प्रार्थना है जिसमें एक स्त्री अपनी प्रतिस्पर्धिनी स्त्री को ध्वस्त तथा परास्त करने के लिए आग्रह करती है (अ० 1।14। इन मंत्रों तथा क्रियाओं को 'आभिचारिक' नाम से पुकारते है, क्योंकि, विशेषतः मारण, मोहन (वशीकरण) तथा उच्चाटन आदि फलो को सिद्ध के निमित्त ही इनका बहुल प्रयोग होता है।

(6) राजकर्माणि –

राजाओं से संबंध बहुत से सूक्त अर्थवेद में पाये जाते है जिनके अध्ययन से तत्कालीन अध्ययन से तत्तकालीन राजनैतिक दशा का विशद चित्र उपलब्ध होता है। शत्रुओं को परास्त करने की प्रार्थना के साथ–साथ संग्राम तथा पदुपयोगी साधनों– जैसे रथ, दुन्दुभि शंख आदि का विशेष विवरण सांग्रामिक दृष्टि से अर्थव की महता घोषित कर रहा है। अर्थव के 'क्षेत्रवेद' नाम का यही कारण प्रतीत होता है। उस युग में प्रजा ही राजा का संवरण (चुनाव) करती थी। अर्थव 3।4 सूक्त में मनुष्यों के साथ ही साथ अश्विन, मित्रावरूण, मरूत् तथा वरूण के द्वारा भी राजा के संवरण करने का वर्णन किया गया है। अन्घ सूक्त (अथर्व० 3।3) से पता चलता है कि देश से निष्कासित राजा पुनः राज्य में बुलाया जाता था, तथा सम्मानपूर्वक प्रतिष्ठा पाता था। संग्राम के लिए वीरों के हृदयसा में उत्साह फूंकनेवाले नागड़े (दुन्दुभि) का वर्णन नितान्त साहित्यिक तथा वीर रस से पूर्ण है। पांचवे काण्ड का दशमसूक्त कवित्व तथा मनोहर भावों के प्रदर्शन के कारण बड़ा ही रोचक, सरस तथा अभिव्यअनात्मक है। बुन्दुभि की गड़गड़ाहट सुनकर शत्रु की नारी को भयानक अस्त्रों के संर्घष के बीच में अपने पुत्र की छाती से चिपका कर भाग जाने की यह प्रार्थना संग्राम के प्रांगण में कितना करूणाजनक दृश्य उपस्थित करती है– (अथर्व 5।20।5)

दुन्दुभिसूक्त (5।12) में सुंदर उपमा तथा भाव–सौष्ठव का योग उसे वीर रस के आदि काव्य होने की स्पष्ट घोषणा कर रहा है। दुन्दुभिसे शत्रुओं के आसन तथा मोहन की प्रार्थना करते समय मालोपमा का यह सौन्दर्य नितान्त अभिराम तथा श्लाघनीय है (वही, 5।21।6) –

यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहदिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा।
एवा त्वं दुन्दुभेअमित्रानभिकन्द प्रत्रासयाथो चितान्ति मोहय।।

मंत्र का आशय है कि जिस प्रकार बाजपक्षी से अन्य पक्षी उद्विग्न हो जाते हैं और जिस प्रकार सिंह की गर्जना सुनकर प्राणी भयभीत हो उठते हैं, उसी प्रकार हे दुन्दुभि! तुम हमारे शत्रुओं के प्रति अपनी गड़गड़ाहट करो, उन्हे खूब डरा दो और उनके चित्त को मोहित कर दो, जिससे युद्ध में उनकी शक्ति का ह्रास हो तथा वे शीघ्र ध्वस्त हो जाय।

पृथिवी सूक्त –

भाषा तथा भाव की दृष्टि से नितान्त उदात्त, भावप्रवण तथा सरस है। पृथ्वी की महिमा का यह वर्णन स्वतन्त्रय के प्रेमी स्वच्छन्दता के रसिक आथर्वण ऋषि का हृदयोद्गार है। इस शैली के प्रौढ़ काव्य की उच्च कल्पना तथा भव्य भावुकता वैदिक साहित्य में भी अन्यत्र दुर्लभ है।

ब्रात्य –

अर्थवेद की शौनक शाखा की जो संहिता हो पूर्णतया उपलब्ध है, तथा आजकल प्रचलित है उसका 15 वां काण्ड 'व्रात्यकांड' के नाम से पुकारा जाता है, क्योंकि इसमं व्रात्यका ही समग्रतया विवरण है। इस काण्ड में दो अनुवादक है, जिनमें प्रथम अनुवादक में 7 सूक्त में अनेक गद्यात्मक मंत्र है। पैप्पलाद शाखा की उपलब्ध अपूर्ण संहिता में 18वें काण्ड के 27वे सूक्त में व्रात्य – विषयक केवल 9 मंत्र ही मिलते है, शेष मंत्र लुप्त हो गये है। विचारणोय प्रश्न यह है कि 'व्रात्य' कौन है ? साधारणतः व्रात्य उस मनुष्य को कहते हैं जिसका जन्म तो द्विजकुल में हुआ हो, पर जिसका उपनयनादि संस्कार न हुआ हो। जान पड़ता कि प्राचीन काल में आर्यों की कुछ अर्धसभ्य शाखाओं थी जो बस्तियों के बाहर रहती थीं और धीरे–धीरे वे आर्य–समाज मे मिले गई, परन्तु उस आदिम काल में उनकाय रहन–सहन अन्य लोगों से भिन्न था। संम्भवत वे वैदिक संस्कारों को नहीं मानती थी। ताण्ड–ब्राहण्ड (17।1) में इनकी वेशभूषा का बड़ा ही विस्तृत तथा सजीव वर्णन किया गया मिलता है। जिससे इनकी जाति–गत विशिष्टता, आचार–व्यवहार और रहन–सहन का रोचक चित्र नेत्रों के सामने झलक उठता है, परन्तु अर्थवेदीकय' ब्रात्यकाण्ड' में निर्दिष्ट व्रात्य का तात्पर्य क्या है ? आचार–विचार के कारण 'व्रात्य' शब्द का श्रृंखला में बद्ध न होने वाले व्यक्तिज का घोतक होन के कारण 'व्रात्य' शब्द का लाक्षणिक अर्थ हुआ – ब्रम्हा, जो जगत के नियमों की श्रृंखला में न बद्ध है और न जो कार्यकारिणी की भावना से ही ओतप्रोत है। इसी ब्रम्हा के स्वरूप का तथा उससे सृष्टिक्रम का व्यवस्थित वर्णन इस काण्ड में विस्तार के साथ किया गया है।

'व्रात्यों वा इदम् अग्र आसीत्–पैप्पलाद शाखा के इस वाक्य से स्पष्ट है कि जगत् के आदि में 'व्रात्य' ही केवल विद्यमान था। फलतः 'व्रात्य' शब्द का ही यहां संकेत है। यह व्रात्य गतिमान् होकर प्रजापति को प्रेरित करता है। यहां सकेत है। यह व्रात्य गतिमान् होकर प्रजापति को प्रेरित करता है। यहां प्रजापति से तात्पर्य हिरण्गर्भ से है– ''स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्यपश्यत् तत्प्राजनयत्। यहां जीवों के शुभाशुभ कर्मों के संस्कार को सुवर्ण कहा गया है। जिस प्रकार सोने से नाना रूप वाला जगत बनता है। इन्हीं के आधार पर होने के कारण प्रजापति हिरण्यगर्भ के भी नाम से प्रख्यात है। हिरण्यगर्भ के द्वारा सृष्टि के क्रम का वर्णन यहां किया गया है। इसके अंनन्तर वह व्रात्य किस प्रकार दिशाओं में जाता है, तत्संबंध जीवों की सृष्टि में समर्थ होता है ? इसका विशद विवरण इस काण में है। इस प्रकार व्रात्यकाण्ड भी उच्छिष्ट सूक्त के समान आध्यात्मिक तथ्यों

का प्रतिपादक है जिसका विपुल वर्णन उपनिषदों में किया गया है। अथर्ववेद के दार्शनिक सूक्तों में निदिष्ट तत्व उपनिषदों की पूर्वपीठिक माने जा सकते हैं। इन्ही सूक्तों की महती व्याख्या उपनिषदों में उपलब्ध होती है। इसी प्रकार अथर्ववेद के विषयों की यह आलोचक उसके ऐहिक तथा आमुष्मिक रूप में परिचयय देने के लिए प्रर्याप्त मानी जा सकती है।

5.4.1 ऋग्वेद का पूरक अथर्ववेद –

काव्य की दृष्टि से अथर्ववेद ऋग्वेद का पूरक माना जा सकता है। ऋग्वेद को प्राचीनतम काव्य का निदर्शन मानना एक स्वतः सिद्ध सिद्धान्त है, परन्तु वह गौरव अथर्ववेद को भी प्रदान करना चाहिए, क्योंकि यदि ऋग्वेद अधिकांश में आधिदैविक तथा अध्यात्मक–विषयक मनोरम मंत्रां कमा एक चारू समुच्चय है, तो अथर्ववेद आधिभौतिक विषयों पर रचित मंत्रों का एक प्रशंसनीय संग्रह है। काव्य की दृष्टि से दोनों में उदात भावना से मंडित तथा मानव–हृदयों को स्पर्श करनेवाले सुचारू गीतिकाव्यों का बृहत संग्रहों है। दोनो मिलकर आर्यों के प्राचीनतम् काव्यकला के रूचिर दृष्टान्त प्रस्तुत करते है, यह संशयहीन सिद्धांत है।

किसी देश या समाज में दो स्तरों के मनुष्य पाये जाते हैं– एक तो है निम्नस्तर के पुरूष, जिनके आचार–विचार एक विचित्र धारा में प्रवाहित होते रहते हैं। साधारणय जनता' के नाम से ये ही पुकार जाते है। दूसरे है उच्च स्तर के पुरूष, जिनकी विशेष शिक्षा–दीक्षा होती है और अपनी शिक्षा के प्रभाव से जिनकीर विचारधारा एक विशिष्ट मोड़ लेकर प्रवाहित होती है। दोनों की रूचि भिन्न होती है और दोनों के लिए कविता भी भिन्न प्रकार की होती है। कविता के ये विभिन्न प्रकार का निःसंदेह एक दूसरे के पूरक होते है। अर्थव तथा ऋग्वेद की कविता का पार्थक्य इसी कारण सिद्ध होता है अथर्ववेद के विचारों का धरातल सामान्य जनजीवन है तो ऋग्वेदा का विशिष्ट जनवजीवन है। साधारण जनता के अनेक विश्ववास विचिसत्र तथा विलक्षण हुआ करते हैं। किसीस रोग का निदान करते समय वे आधिदैविक कारणों की उपेक्षा नहीं करते है। उनके जीवन पर भूत–दूत, प्रेत–पिशाच, डाकिनी–शाकिनी जैस अदृश्य प्राणियों का अस्तित्व। उनकी दृष्टि में ये पदार्थ अदृश्य जगत के निवासी न होकर इस ठोस धरातल पर उसी प्रकार रहते है। जिस प्रकार मनुष्य तथा पशु। फलतः उनके विचार में इन प्राणियों का अस्तित्व उनके जीवन की घटनाओं को प्रभावित करने में सर्वथा समर्थ होता है। कोई कुमारी अपने लिए योग्य पति पाने में यदि असमर्थ है, तो इसका कारणय वह न तो अपने सौदर्य के अभाव को मानती है, और न अपने माता–पिता के प्रयत्नों के शैथिल्य को, प्रस्तुत वह किसी अदृश्य जीव को अपने ऊपर प्रभावशाली मानकर उसके प्रभाव को ध्वस्त करने की प्रयत्न करती है। साधारणय जीव अपने शत्रु को परास्त करने के लिए टोना टोटका की शरण में जाता है। ऐसे प्राकृत जन के विश्वासों तथा आचारों की जानकारी के लिए अथर्ववेद सबसे महत्वपूर्ण साधन है। इस वेद के अध्ययन से पता चलता है कि अभिचार दो प्रकार का होता था– एक तो मंगलसाधक, जिससे साधक अपने कल्याण की कामना करता था– दूसरा होता था अमंगलसाधक जिससे शत्रुओं को परास्त तथा धवस्त करने की भावना प्रबल होती थी। पवित्र अभिचार (अथर्व) में हमे रोग की चिकित्सा के हेतु मंत्र मिलते है तो अमांगलिक अभिचार (आंगरिस) में शत्रुओं तथा विद्रोहियों के प्रति अभिशाप युक्त मंत्र मिलते हैं। इन दोनों प्रकार के अभिचार मंत्रों का संग्रह के होने के कारण ही तो यह समग्र वेद 'अर्थर्वाड्गिरस' के नाम से प्रसिद्ध है।

कतिपय उदाहरणों के द्वारा इन अभिचारों के स्वरूप का यहां प्रदर्शन किया जा रहा है। यदि कोई व्यक्ति किसी सुंदरी का प्रेम प्राप्त करना चाहता है, तो उसे अपनी

इच्छा पूर्ण करने के लिये अथर्व में अनेक विधान मिलते है। 'कौशिकसूत्र' में एक विधान का प्रकार इस प्रकार है– प्रेमी अपनी सुंदरी की मिट्टी की मूर्ति बनाता है। अपने हाथ में वह सन की डोरी वाले धनुष को लेता हैं, जिसके बाण का अग्रभाग तीक्षण कंटक से विधा रहता है। इसी वाण से अपनी प्रेयसी के हृदय को बेधता है। और साथ में अथर्व के मंत्रों का (3।24।1–5 और 6) उच्चारण करता है, जिससे उसका मनोरथ पूर्ण हो जाता है। कभी–कभी बड़े और अभिचार का प्रयोग हमत पाते ह। जब किसी स्त्री का बन्ध्या बनाना अभीष्ट होता है अथवा किसी पुरूष को पुंस्त्वशक्त से विहीन बना कर नंपुसक बनाने की भावना प्रबल होती है। (अथर्व 6।128; 9।90)। दुःस्वप्नों को दूर हटाने के लिए कहीं भूतापसरणविध दी गई है, तो कहीं संग्राम में शत्रु की प्रबल होना को धवस्त करने के लिए राजा को विजयी बनाने के लिए अनेक अभिचार मंत्र है। रोगों को दूर करने के नाना प्रकार की ओषधियों का प्रयोग मंत्रों के साथ दिया गया है। साधारण ज्वर (तक्मन्) किलास (श्रेवत कुष्ठ), क्षेत्रिय रोग (कुलक्रमागत रोग), यक्ष्मा (क्षय रोग), विष (शरीर में किसी भी प्रकार से प्रविष्ट विष) आदि के निवारण के लिए ओषधियों का प्रयोग नाना विधान के साथ यहां उपलब्ध होता है। जिससे मानव के कल्याण की भावना सर्वतोमुखी प्रतीत होती है। ताप्पर्य यह है कि अथर्ववेद प्राकृतजन के विश्वासों को, आचार विचारों का, रहन–सहन का, अलौलिक, शक्ति में दृढ़ विश्वास का, भूतप्रेस आदि का अदृश्य जीवों में आस्था का एक विराट् विश्वसनीय कोश है, जिसकी सहायता से हम उस प्राचीन युग की एक भव्य झांकी देख सकते है। इसके मंत्रों की भाषा भी अपेक्षाकृत सरल तथा सुबोध है।

उधर ऋग्वेद संस्कृतजन के विचारों की झांकी प्रस्तुत करता है। उसके आचार–विचारों का धरात्ल नितान्त उच्चस्तरीय, सुसंकृत तथा शिष्ट है। समाज के उच्चस्तर के विचारों की विचार–धारा मंत्रों के माध्यम से यहां प्रविाहित होती है। मात्र जीवन को सुखमय बनाने वाले तथा प्राकृत दृश्यों के प्रतीकरूप देव हमारे जीवन में सर्वथा प्रभविष्णु तथा महत्वपूर्ण शक्तियां है। इसीलिए पुरोहितवर्ग अपने लिए, अपने यजमान के लिए अपने आश्रयदाताओं के लिए बड़ी सुश्लिष्ट स्तुतियां सुनाकर उन्हें कृपाशील बनाने के लिए प्रार्थना करता है। वे सर्वदा अपने पुत्रपौत्रों के सुख–समृद्धि आदि के निमित देवों के प्रार्थना करने में कभी नहीं चूकते। देवों को साक्षात् करने तथा श्रद्धामयी पूजा देने का प्रधान उपकरण यज्ञ माना है। इन्हीं को लक्ष्य कर ऋग्वेद के अधिकांश मंत्र प्रवर्तित होते हैं। अनेक सूक्त यज्ञ के संबंध से सर्वथा विहीन आताततः प्रतीत होते है। परन्तु भीतर कोई याज्ञिक उद्देश्य अवश्यमेव विद्यामान रहती है। यज्ञीय उपकरण नितान्त उदात तथा विशुद्ध होते है। घृत, यव तिल तथा सोमरस– ये देवता के उद्देश्य से अर्पित किये जानेवाले प्रधान पदार्थ हैं। इनमें भी सोमरस का प्रामुख्य है। सोमयाग में सोमरस तीन बार पत्थरों से कूटकर चुलाया जाता था, जिसे 'सवन' कहते थे। तदनन्तर उसके वस्त्र से उसे छानकर द्रोण कलश में रखते थे, तथा उसमें दूध पिलाने की भी विधि थी, इसी का नाम था 'पावमान सोम' जिसके विशिष्ट मंत्रों के लिए ऋग्वेद का एक विशिष्ट मंडल ही पृथक कर दिया गया है। फलतः यज्ञ के अवसर पर इन्द्र, वरूण, सूर्य, सविता, अश्विन आदि देवताओं के लिए सोमरस का समर्पण ऋग्वेदीय युगा का आवश्यक धार्मिक कृत्या था। इसी के लिए यजु तथा साम का भी प्रयोग होता था। फलतः ये तीनो–ऋक, यजुः तथा सामन एक ही यज्ञ को ध्यान में लक्ष्य कर प्रवृत होने वाले मंत्रपुंज है। समाज का उच्चस्तरीयय भाग इस पूजा–विधान का अधिकारी था तथा इसके लिए प्रयुक्त होने वाली संस्कृत भाषा अपने विशुद्ध उदात्त रूप में हमारे सामने आती है। फलतः ऋग्वेद तथा अथर्व के मंत्रों दोनो मिलकर वैदिक युग के धार्मिक विधि–विधा का स्वरूप प्रस्तुत करने में समर्थ है। प्राकृतजन तथा संस्कृतजन दोनों जानों का विचार धरातल इन ग्रंथों के स्पष्टतः

दृष्टिगोचर होता है। अतएव ये दोनों एक दूसरेस के परस्पर पूरक माने जा सकते हैं।

ऊपर के वर्णन में यह न समझना चाहिए कि अथर्व में यज्ञ के विधान का स्थान नगण्य और उपेक्षणीय है। ऋग्वेदीय यज्ञ–याग का विधान यहां भी किया गया था, परन्तु यज्ञ का संबंध अभिचार के साथ विशेष रूप से प्रतिष्ठित किया गया। उद्देश्य स्वर्ग की प्राप्ति के साथ ही साथ सांसारिक अभ्युदय तथा शत्रुओं का पराजय भी था। यज्ञ का एक प्रकार माया शक्ति का आश्रय माना जाने लगा और इस माया शक्ति से संपन्न होने के कारण यज्ञ का नाम ही 'ब्राम्हन' पड़ गया। इस प्रकार अथर्व में हम यज्ञ का भावना में भी एक विकासस का परिचय पाते है। यह विकास भौतिक रूप से मानस स्तर तक पहुंचने का सूचक है। यज्ञ प्रतीकात्मक रूप से होकर मानस विधान की कोटि में आता है, अर्थात् यज्ञ के वास्तविक विधान से आगे उठकर यजमान केवल मानसिक किया के द्वारा अब यज्ञ का निष्पादन करता हैं। इस प्रकार यज्ञ की यह आध्यात्मिक भावना हमें औपनिषद कल्पना के पास पहुंचा देती है। अब यज्ञ बहुत सीधे–सादे विधान थे, जिनकाय सम्पादन थोड़े से खर्च में और थोड़े ही दिनों में होना शक्य हो गया। इस प्रकार अथर्ववेद में हम यज्ञ के स्वरूप विधान में पूर्ववेदों की अपेक्षा मौलिक परिवर्तन पाते हैं।

5.4.2 अथर्ववेद में कौटुम्बिक अभिचार

वैदिक साहित्य में अथर्ववेद का स्थान बड़ा ही अनुपम है। जहां अन्य के देवताओं की स्तुति को ही प्रतिपाद्य विषय बनाते है, वहां अथर्ववेद भौतिक विषयों के भी वर्णन में अपने को कृतकार्य मानता है। आदिम मानव की नाना प्रकार की विचित्र क्रियाओं, आचार–विचार की पूरी जानकारी के लिए अथर्ववेद से पुराना ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता है। जैसे शत्रुओं पर विजय पाने के लिए, क्लेशदायी दीर्घ रोगों के निवारण के लिए, सद्योजात शिशु तथा उसकी माता (जच्चा बच्चा) को सन्तप्त करने वाले भूत प्रेतों के विनाश के लिए नाना अभिचारों का विचित्र वर्णन अथर्ववेदस के सूक्तों में पाया जाता है, जिसके कारण यह वेद 'नृतत्व' (ऐनथ्रोपोलाजी) के अभ्यासियों के लिए एक बहुमूल्य विश्वकोष का काम करता है। जादू टोना का प्रचार आथर्वण सभ्यता की एक विशिष्ट घटना है।

जादू टोना सदा बुरा ही नहीं हुआ करता है। इसके द्वारा प्राचीन मानव अपने कुटुम्ब की रक्षा अपने शत्रुओं से तथा रोगों के आक्रमणय से किया करता था। 'आत्म सरंक्षणय' की भावना ही जादू–टोना जैसी क्रियाओं की पृष्ठभूमि है। प्राण इस पृथ्वीतल पर अपना अस्तित्व बनायें रखना चाहता है। उसकी कामना यही रहती है कि वह भी दीर्घ काल तक सुख भोगे, तथा उसकाय कुटुम्ब, उसका परिवार तथा उसकी संतान भी कल्याणमय जीवन बितावे। इसे ही कहते है आत्म–सरंक्षण की सहज प्रवृति। मानव प्रथमतः अपनी रक्षा अपने की भौतिक उद्योगों के बल पर करता है। परन्तु जब अफलता उसे दूर खदेड़ कर उसके प्रयासों का विफल बना देती है तब वह आधिदैविक क्रियाओं तथा प्रयासों की ओर अग्रसर होता है और इन्हीं प्रयासों के अंतगर्त जादू–टोना भीसय गणना की जाती है। जादू (संस्कृत नाम यातु) इस तरह दो प्रकार का होता है– शोभन तथा अशोभन, भला और बुरा। शोभन प्रकार में किसी दूसरे के द्वारा किये गये अनिष्ट से अपने को बचाने की भावना प्रबल होती है। अशोभन प्रकार से शत्रुविशेष के ऊपर मारण, मोहन तथा उच्चाटन की भावनायें विशेष जागरूक रहती हैं। प्राश्चात्य जगत् कितना भी सभय क्यों ने हो गया हो, परन्तु वहां भी इन दोंनो की सता विद्यमान है। (हाइट मैजिक ब्लैक मैजिक) इनमें में से प्रथम प्रकार 'श्वेतजादू' के नाम से प्रसिद्ध है, तो दूसरा 'काला जादू' के नाम से प्रख्यात है। शेक्सपीयर ने अपने अनेक नाटकों में विशेषतः 'मैक्बेथ' में इस दूसरे प्रकार के जादू का साहित्यक विवरण प्रस्तुत कर यूरोप की मध्ययुगी न

धारणाओं का एक भव्यरूप प्रस्तुत किया है।

अथर्ववेद ऐसे विश्वासों की जानकारी के लिए मानव–इतिहास में सबसे प्राचीन ग्रंथरत्न है। अथर्व संहिता में भी अन्य संहिताओं के सामन मंत्रों का ही संग्रह है, परन्तु इन मंत्रों का उपयोग कब तथा किस उद्देश्य से किया जाता था, इसका पता हमे कौशिक–गृहसूत्र की सहायताय से ही लगता है। कौशिक गृहसूत्र अथर्ववेद का एकमात्र गृहासूत्र है जिसमें 14 अध्याय है। इसका सम्पादन न्यूहावेन (अमेरिका) से डा. ब्लूमफील्ड ने किया है। (1890), तथा इसका पुनमुर्दण हिन्दी अनुवाद के साथ किया है मुजफ्फर पुर से उदयनारायण सिंह ने (1942 ई में)। मानव विज्ञान के इतिहास में कौशिश–सूत्र नितान्त उपादेय, प्रमाणिक तथा रोचक ग्रंथ है जिसमें उन अभिचारीयय क्रियाकलापों का विचित्र वर्णन है जो मंत्रों के साथ प्रयुक्त होते थे।

अथर्ववेद के केवल विवाह संबंधी सूक्तों का एक संक्षिप्त अध्ययन यहां प्रस्तुत किया जाता है। विवाह से संबंध अनेक सूक्त अथर्ववेद में उपलब्ध होते है, जिनके अनुशीलन से उस युग के समाज का चित्र हमारे नेत्रों के सामने बलात् प्रस्तुत हो जाता है। इन सूक्तों में कही तो पुत्र की उत्पति के लिए प्रार्थना है, तो कहीं सद्योजात शिशु की रक्षा के लिए देवाताओं की स्तुति है। अथर्वदेव का 14 वां कांण्ड 'विवाह काण्ड' है जिसके दो अनुवाकों में 139 मंत्र है, जिनका उपयोग विवाह के अवसर पर किया जाता है। इनमें से अनेक मंत्र ऋग्वेद के वैवाहिक सूक्तों में भी उपलब्ध है। नीचे के मंत्र में अग्नि तथा सूर्य से प्रार्थना की गई है कि वे कुटुम्ब के नाना क्लेशों को दूर करे (अथर्व 12 |2 |62)–

यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वागृहेषु
निष्ठितमघ – कृदिभ्रघं कृतम्।
अनिष्ठवा तस्मादेनसः
सविता च प्रमुच्यताम्।।

इसी प्रकार नव वधू अपनेय नवीन घर– पतिगृह में आती है, तब उसे दीर्घ जीव पाने के लिए भव्य प्रार्थना इस मंत्र में की गई है (वही मंत्र 75)–

प्रबुध्यस्व सुसुधा बुध्यमाना
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो
दीर्घ त आयुः सविता कृणाते।।

विभाग द्वारा खुदाई में मिली मूर्तियों के केशसज्जा की परीक्षा आवश्यक हैं मोहन–जोदड़ों और बक्सर की मृण्मयी मूर्तियों के सिर पर जो केशरचना दीख पड़ती है वह इस वैदिक–विधि की परम्परा से बहुत साम्य रखती है।

5.4.3 अथर्व वैदिककाल में यातायात के साधन

यातायात का प्रधान साधन रथ था। वैदिक युग में रथ संचरण, क्रीड़ा तथा युद्ध के लिए नियुक्त किये जाते थे। राज्य की सेना में रथियों का प्रधान स्थान था। उत्सवों में रथों की दोड़ हुआ करती थी। उसमें सम्मिलित होने वाले रथ एक चक्राकार रंगस्थल में तेजी से दौड़ाये जाते थे। उस युग मेकं रथ की निर्माणविधि का भी ज्ञान हमें प्राप्त होता है। रथ लकड़ी का बनता था जिसमें उसका 'अक्ष' (दोनों पहियों को जोड़ने वाला डंडा) 'अरटु' नामक लकड़ी का बनता था। अक्ष तथा युग (जुये) को जोड़ने वाला डंडा भी लकड़ी का बनता था और 'ईषा दण्ड' कहलाता था। ईषा को जूये में किये गये छेद ('तद्मन') में बैठाया जाता था और उसे योक्त्रक से बाँध दिया जाता थां ईषा का जो भाग जूये से आगे की ओर निकलाा रहता था 'प्रउुग' कहलाता था। घोड़े या बैल जूआ कन्धे

पर रखने के समय इधर–उधर भाग न जाँय, इसलिए जूए के दोनों ओर छोटे–छोटे डंडे पहिना दिये जाते थे। इनका नाम था 'शम्या'। अक्ष के दोनों ओर पहिये ('चक्र') मजबूती से कसे जाते थे। चक्र की बाहरी गोलाई को 'प्रधि' तथा भीतरी भाग को 'पवि' और दोनों को मिलाकर 'नेवि' कहते थे। तीलियों को 'अर' या 'अरा' कहते थे। अक्ष के ओर उन्हें मजबूत बनाने ओर दौड़ते समय खिसकने न देने के लिए लगाई गई छोओी लकड़ियाँ 'आणि' कहालती थी। अक्ष के ऊपर रथ का मुख्य भाग होता था, जो कोश या 'बन्धुर' कहा जाता था। कोश के भीतरी भाग को 'नीड़' तथा अगल–बगल के हिस्से को 'पक्ष' कहते थे। रथ में योद्धा के बैठने का स्थान 'गर्ता' (कभी–कभी 'बन्धुर' भी) कहा जाता था, वह सारथि के दाहिने पार्श्व में बैठता था। रथ के ऊपरी भाग को 'रषशीर्ष' कहते थे। रथ के बेग को घटाने के लिए या आवश्यकता पड़ने पर रथ को सहारा देने के लिए भी इषादण्ड से एक भारी सी लकड़ी नीचे की ओर लटकाई जाती थी जिसे 'कस्तंभी' या 'अपालम्ब' कहते थे।

ब्हुधा रथ में दो या चार घोड़े जोते थे। कभी–कभी तीन घोड़े भी जोते जाते थे। इस तीसरे घोड़े का नाम 'प्रष्टि' था, कभी–कभी एक घोड़े से भी काम चलाना पड़ता था। सारथी लगाम तथा चाबुक (प्रतोद) से रथ का संचालन करता था। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से पता चलता है कि रथों का वर्गीकरण रथा के सिकी वैशिष्टय के आधार पर किया जाता था। वाहकों के आधार पर वृषरथ, षडश्व पंचवाही आदि; रथभागों के आधार पर त्रिबन्धुर, सप्त–चक्र, हिरण्यचक्र, हिरण्यप्रउग आदि नाम होते थे।

रथ से भिन्न एक प्रकार का और भी यान होता था, जो 'अनस्' (गाड़ी) शब्द के द्वारा व्यवहृत किया जाता था। रथ तथा गाड़ी की बनावट प्रायः एक प्रकार की ही होती थी। गाड़ी में बैल और कभी–कभी गौएँ भी जोती जाती थीं। इन गाड़ियों के ऊपर आच्छादन भी रहता था। सूर्य की कन्या 'सूर्या' को विवाह के समय जिस गाड़ी में बैठाया गया था वह आच्छादित थी। गाड़ी खींचने वाले जानवर को 'धूर्षद' कहते थे। गाड़ियाँ साधारणतया दो प्रकार की होती थीं–(1) मनुष्यवाही–जो 'वृक्षरथ' कहलाती थी, तथा (2) भारवाही–अनाज ढोने वाली बड़ी–बड़ी गाड़ी को 'शकट' 'सगड़' (आजकल का 'संग्गड़) कहते थे, तथा छोटी गाड़ी 'गोलि"' या 'लघुमान' कहलाती थीं।

इस युग में जलयान का भी उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद और वाजसनेयी संहिता में सौ डाँडों से चलाये जाने वाले जहाज का उल्लेख है। पतवार को 'अरित्र' तथा नाविक को 'अरितृ' कहते थे। शतपथ–ब्राह्मण में पतवार को 'मण्ड' तथा परवर्ती काल में 'कर्ण' कहा जाता था। वैदिक युग में भी जलयान के द्वारा सामुद्रिक व्यापार का स्पष्ट निर्देश मिलता है। पिछले युग के साहित्य में बड़े–बड़े व्यापारी जहाज, युद्ध पोत, क्रीड़ा–नौका आदि अनेक प्रकार के, जलयानों का वर्णन मिलता है। इससे स्पष्ट है कि ऋग्वेद के युग में समुद्र कसे आर्यो का पूर्ण परिचय था; बड़ी–बड़ी नौकाओं को वनाकर उस युग के आर्य लोग समुद्री व्यापार करने में प्रवीण थे।

बोध प्रश्न –

1. बहु विकल्पीय प्रश्न

(अ) अथर्व शब्द की व्याख्या हमें प्राप्त होती है

(क) गोपथ ब्राह्मण (ख) शतपथ ब्राह्मण

(ग) ऐतरीय ब्राह्मण (घ) तैत्तिरियोपनिषद्

(ब) तीन संहिताऐं प्राप्त होती हैं

(क) यजुर्वेद (ख) ऋग्वेद

(ग) सामवेद (घ) अथर्ववेद

(स) दिर्घायु के लिए प्रार्थना है।

(क) आयुष्यानि सुक्त में (ख) भैषज्यानि सुक्त में

(ग) पोष्टिकानि सुक्त में (घ) स्त्रीकर्माणि सुक्त में

2. नीचे वाक्य दिये गये हैं सही वाक्यों को सामने सही (√) तथा गलत वाक्यों के सामने गलत (×)
का निशान लगाऐं–

(क) काव्य की दृष्टि से अथर्ववेद ऋग्वेद का पुरक है। ( )

(ख) भौषज्यानि सुक्त के अन्तर्गत घरवनाने के लिये उपाय बताऐं गये है। ( )

(ग) पोष्टिकानि सुक्त में सबसे सुन्दर वृष्टि सूक्त है। ( )

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(क) अथर्वा"रस के नाम से......................................प्रसिद्ध है।

(ख) दुन्दुभिसूक्त में मुख्यरस.................................है।

(ग) राजसम्बन्धी विषयों की चर्चा..........................सूक्त से सम्बन्धित

5.6 सारांश

वेद चतुष्टय में अथर्व वेद की महत्ता स्वतःही स्थापित है। इसको जानने वाला अथवा ज्ञाता को ब्रह्मा ककहा जाता है जिससे इसके स्वरूप का स्वतः ही पता चल जाता है। इस इकाई की माध्यम से अथर्ववेद के अर्थ, इसके स्वरूप इसकी मुख्य शाखाऐं तथा इसके वर्ण्य विषय के साथ–साथ तत्कालीन समाज पर प्रकाश डाला गया है। जिसकी सहायता अथर्ववेद का परिचयात्मक स्वरूप आप के प्रतिभा तक पहुँचाया जा सकें। इसके अध्ययन के उपरान्त आप उन सभी साधारण विषयों को जान होगें की अथर्ववेद आज के परिवेश के लिए कितना महत्व स्वान्तर्गत समेटे हुए है।

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (अ) (क) (ब) (घ) (स) (क)
2. (क) (√) (ख) (×) (ग) (√)
3. (क) अथर्ववेद (ख) वीर (ग) राजकर्माणि

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आचार्य बलदेव उपाध्याय – वैदिक साहित्य और संस्कृति

कन्हैयालाल पोद्दार – संस्कृत साहित्य का इतिहास

5.9 अन्य उपयोगी पुस्तकें

संस्कृत साहित्य का इतिहास – उमाशंकर शर्मा 'ऋर्षि'

अथर्व संहिता एण्डट्स फार्म्स – डॉ० एच० आर दिवेकर

काश्यम संहिता – राजगुरु पण्डित हेमराज शर्मा

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

- अर्थवेद का अर्थ बताते हुए उकसे स्वरूप का निर्धारण किजिए।
- अथर्ववेद के वर्ण्य विषय पर प्रकाश डालिये।